कौटिलीय अर्थशास्त्र - एक संक्षिप्त समीक्षा

* डॉ0 अंजू दत्त

आचार्य कौटिल्य का महाव्यक्तित्व एक निपुण राजनीतिज्ञ के रूप में मौर्य साम्राज्य के विशाल यश के साथ एकप्राण होकर, एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी अपूर्व कीर्ति–कथा में अमर बनाये हुए है और दूसरी ओर अपनी अद्‌भुत, अप्रतिम कृति के कारण संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय का एकमात्र विद्वान होने का गौरव उन्हें प्राप्त है। उनका एक लोक प्रसिद्ध नाम चाणक्य भी है। चाणक्य उन्हें चणक का पुत्र होने के कारण और कौटिल्य उन्हें कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण कहा जाता है, यह दोनों नाम उनके पिता के द्वारा प्रदत्त नहीं है अपितु वंश नाम या उपाधि नाम हैं। कौटिल्य का वास्तविक पितृ–प्रदत्त नाम विष्णु गुप्त था। कौटिल्य के इस विष्णु गुप्त नाम का संकेत आचार्य कामंदक के नीतिसार में उपलब्ध होता है। वैसे आचार्य कौटिल्य को उक्त नामों के अतिरिक्त वात्स्यायन, मल्लनाग, पक्षिलस्वामी, अंगल तथा द्रमिल के नाम से भी जाना जाता है। कौटिल्य ने ही नन्दवंश का उन्मूलन कर उसके स्थान पर मौर्य वंश को प्रतिष्ठित किया था।

अर्थशास्त्र की प्राचीन परम्परा का अध्ययन करते समय इस सम्बन्ध में जानने योग्य यह विशेष तथ्य है कि आरम्भ में दण्ड नीति और शासन सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र के लिए ही होता था किन्तु कौटिल्य के पश्चात् अर्थशास्त्र से केवल जनपद सम्बन्धी कार्यों का विघान होने लगा था। आचार्य कौटिल्य ने अर्थ की व्याख्या करते हुए लिखा कि अर्थ का अभिप्राय है मनुष्यों की बस्ती अर्थात् वह प्रदेश जिसमें मनुष्य बसते हों। अर्थशास्त्र उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें राज्य की प्राप्ति और उसके पालन के उपायों का वर्णन हो।

आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा, राज्य, समाज, धर्म, प्रजा, ईश्वर, कण्टक शोधन, योगवृत्त, शाड़गुण्य, व्यसनाधिकारिक,

* प्राचार्या एवं विभागाध्यक्षा, संस्कृत आर्य कन्या महाविद्यालय, झाँसी

अभियास्यत्कर्म, छावनी निर्माण, भेदक प्रयोग, दूतकर्म, मन्त्र युद्ध, शत्रु के दुर्ग को घेर कर अपने अधिकार में करना, शत्रु वध के प्रयोग एवं तन्त्रयुक्तिः आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस दृष्टि से चाणक्य का यह शास्त्र आज भी अद्यतन है। यहाँ हमने आचार्य चाणक्य के अर्थशास्त्र पर एक संक्षिप्त अवलोकन करने का प्रयास किया है–

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथ्वीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः।।

प्र.२: अ0 ४

जो विद्वान राजा प्राणिमात्र की हित कामना में लगा रहता है, वह चिरकाल तक पृथ्वी का निर्बाध शासन करता है।

आचार्य कौटिल्य कहते है कि जिस प्रकार एक चक्र से रथ नही चल सकता वैसे ही सहयोग के बिना राज्य और राजा भी एक पग नही चल सकते राजा को राज्य कार्य हेतु कुशलता पूर्वक योग्य सहभागियों की नियुक्ति करनी चाहिये। गुप्तचरों की नियुक्ति की अनिवार्यता को वर्णित करते हुये कहा गया, गुप्तचर राज्य के समस्त प्राणियों पर तथा बाहरी खतरों के प्रति सतर्क रहें। कृषि और कृषकों की राजा सदैव रक्षा करें, साथ ही चोर, हिंसक जीव, विश तथा दूसरी व्याधियों से किसानों के पशुओं की रक्षा का विधान वर्णित किया गया है।

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवाकृददुर्ग कारयेत्।
जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयत्।।

प्र.१६ : अ0 ३

आचार्य चाणक्य का कथन है, राज्य के चारों ओर राजा को युद्धोचित दुर्गों का निर्माण करवाना चाहिये और राज्य के मध्य में धनवृद्धि के केन्द्र नगरों और राज्य की राजधानी बसानी चाहिये।

राजा के उदात्त चरित्र को वर्णित करते हुए कहा गया है कि यदि किसी कार्य व्यवहार में राजा को अत्यधिक लाभ प्राप्त होता है और प्रजा को हानि तो राजा को तत्काल उस कार्य को सम्पन्न करने के विचार का

परित्याग कर देना चाहिये। सूत्राध्यक्ष के कार्यों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि विधवाओं, कन्या आदि से ऊन, कपास, रेशम इत्यादि कतवा कर वस्त्र निर्मित करवायें। सुरापान आदि का सेवन कब किया जाये, इसका भी व्यवहारिक दृष्टिकोण दृष्टव्य है।

शस्त्र–अस्त्र की विद्या में श्रेष्ठ सेनापति का कर्तव्य है कि वह हाथी, अश्व, रथ आदि चतुरंगिणी सेना की समुचित व्यवस्था करें।

समाहर्त्ता मात्र कर–संग्रह हेतु ही प्रतिबद्ध न रहे अपितु ग्रामीण विकास के उत्कृष्ट कार्यों के प्रति भी सर्वदा प्रयासरत् रहें। विवादों के निस्तारण हेतु आचार्य चाणक्य ने कानून को चार भागों में विभाजित किया है–धर्म अर्थात् धर्मशास्त्र के अनुसार, व्यवहार अर्थात् प्रत्यक्ष साक्ष्य, चरित्र अर्थात् आचरण एवं राजशासन अर्थात् राजा से प्रचारित आज्ञायें। यहाँ राजा से प्रचारित आज्ञाओं का सर्वाधिक महत्व है।

पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा माता–पिता दोनों की मृत्यु के उपरान्त ही सम्भव है। जिस धन का कोई उत्तराधिकारी न हो, उसे राजा राज–कोष में अधिग्रहित कर सकता है–

देशस्य जात्याः सङस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः।
उचितस्तस्य तेनैव दायधर्म प्रकल्पयेत्।।

प्र.६३ :अ0 ६

देश, जाति, संघ और गाँव के लिये जैसा धर्मोचित एवं श्रेयस्कर हो, उसी के अनुसार वहाँ का दाय विभाग करना चाहिये।

चाणक्य का कथन है, जो राजा उचित दाय भाग की व्यवस्था करता है वह स्वर्ग को प्राप्त होता है।

कर्मकर के विषय में उल्लेख है कि वह उतना ही वेतन ले, जो सुनिश्चित है। पूर्व में वेतन तय न होने की स्थिति में परिश्रम व योग्यता के आधार पर वेतन देने का प्रावधान है।

चाणक्य के मतानुसार साहूकार, नट, भिक्षुक, शिल्पी आदि चोर न कहलाने वाले वास्तव में चोर होते हैं, राजा को सावधानी पूर्वक इन पर

नियंत्रण रखना चाहिये।

पणाध्यक्ष निपुणता के साथ व्यापारियों की प्रत्येक वस्तु के मूल्य को सुनिश्चित करें।

राजा का परम कर्तव्य है कि अकाल पड़ने पर किसानों को बीज व खाद्य–सामग्री निःशुल्क वितरित करे। आठ प्रकार की दैवी आपत्तियों का विस्तृत उल्लेख भी अर्थशास्त्र में प्राप्य है।

उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के दण्डों की व्यवस्था करते हुये कहा गया है कि जो पात्र जिस दण्ड के अनुरूप हो उसे वैसा हुए ही दण्ड दिया जाना है, दण्ड–व्यवस्था, में पक्षपात किसी भी अवस्था में नहीं किया जाना चाहिये।

अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः अर्थात् धर्म, अर्थ और काम अर्थ पर आश्रित है, ऐसा आचार्य कौटिल्य का अभिमत है।

अमात्य नियुक्ति के विषय में विस्तृत उल्लेख करते हुए कहा गया है कि अमात्य की नियुक्ति विद्या, बुद्धि, साहस, गुण दोष, काल, देश और पात्र का विचार करके ही करें। इस विषय में आचार्य चाणक्य ने पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि भारद्वाज आदि आचार्यों के मतों को उल्लिखित किया है।

आत्मवान त्वल्पदेशोऽपि युक्तः प्रकृति सम्पदा।
नयज्ञः पृथिवी कृत्स्नां जयत्येव न हीयते।।

अल्प देश का स्वामी होने पर भी यदि राजा आत्मगुण सम्पन्न है तो अपनी नीतियों, बुद्धि से समस्त पृथिवी पर विजय प्राप्त कर सकता है और कभी पराजित नही होता है। किसी भी राज्य की प्रभुसत्ता के लिये सात तत्व अनिवार्य हैं– स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड तथा मित्र। जब ये सम्पूर्ण तत्व परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करने की नीति सुनिश्चित करते हैं तो ऐसा राज्य क्रमशः विकसित, शक्ति सम्पन्न होता चला जाता है।

कर (टैक्स) ग्रहण के सम्बन्ध में आचार्य चाणक्य का कथन है कि जिस प्रकार उपवन में कच्चे फलों का परित्याग कर दिया जाता है और पके

फलों को गृहीत किया जाता है, उसी प्रकार कर–संग्रह के अवसर पर यदि कोई कर देने में असमर्थ हो तो उक्त पर अनावश्यक दबाव नहीं डालना चाहिये अपितु कच्चे फल की भांति उसको छोड़ देना चाहिये, ऐसा न होने की अवस्था में प्रजा में विद्रोह भी हो सकता है।

कार्यारम्भ के समय जो लोग ग्रह–नक्षत्र पर विश्वास करते हैं, चाणक्य के कथनानुसार–विजय यात्रा करते समय ग्रह–नक्षत्र अथवा शुभ मुहूर्त की अपेक्षा करना सर्वथा निरर्थक है, इसकी अपेक्षा विजय–यात्रा से प्राप्त होने वाली लाभ–हानि, क्षय–व्यय का विचार करना वास्तव में सार्थक है। प्रारम्भ में ही यदि विपत्तियों को नियन्त्रित कर लिया जाये तो उनसे मुक्ति पायी जा सकती है, समय व्यतीत हो जाने पर सुई की नोक सदृश विपत्ति भी पर्वताकार रूप धारण कर सकती है।

सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोक प्रवादः।

संघ में अपूर्व शक्ति होती है, संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ इन तीनों में संघलाभ उत्तम है, क्योंकि संगठित होने से संघों को शत्रु दबा नहीं पाता है। इन संघों के अनुकूल होने पर विजिगीषु को साम और दान के द्वारा उनका उपभोग करना चाहिए और प्रतिकूल अवस्था में भेद तथा दण्ड के द्वारा उनका उपभोग करना चाहिये।

राजा को चाहिये कि अधार्मिक शत्रुओं पर चारों वर्णों की रक्षा में प्रयुक्त होने वाले मंत्र, औषधि और प्रयोगों का उपयोग करे। औषध, मंत्र तथा माया योग द्वारा किसी भी उपाय से शत्रु पक्ष का विनाश कर स्वपक्ष की रक्षा करे।

अधिकाधिक लाभ की चर्चा करते हुए आचार्य कौटिल्य का मानना है कि अधिक समय में प्राप्त अधिक लाभ यदि अन्नादि बीज के समान नाशवान न हो अर्थात् चिरकाल तक स्थित रहने वाला हो तभी विशेष रूप से श्रेष्ठ होगा किन्तु यदि यह लाभ विनाश को प्राप्त या बाधाओं से युक्त हो तो अल्पकालीन अन्य लाभ ही विशिष्ट हैं।

अर्थशास्त्र में मुख्य विचारणीय विषय, जैसे राजपुत्र–रक्षण, धर्म,

विवाह, वैवाहिक व्यवहार, अन्यान्य अपराध, व्यापार कर्म आन्वीक्षकी स्थापना, दण्ड विधान की व्यापक, व्यवहारिक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। स्वपुत्रों से राजा को सर्वथा सावधान रहना चाहिये। ऐश्वर्य, कामादि से युक्त राजपुत्र अपने पिता का वध कर देते हैं, ऐसा देखने में आया है। शैशवावस्था के उपरान्त राजपुत्रों की उचित शिक्षा–दीक्षा हेतु उन्हें राज–पुरोहितों को अर्पित कर देना चाहिये। बुद्धिमान, आहार्य बुद्धि और दुर्बुद्धि में तीन प्रकार के राज पुत्र होते हैं। यदि राजा के केवल दुर्बुद्धि पुत्र हो तो अपनी कन्या का विवाह योग्य वर से इस शर्त पर किया जाये कि उनसे उत्पन्न पुत्र राजा का होगा। सामान्य रूप से ज्येष्ठ पुत्र को राजा सिंहासन पर आरूढ़ करता है किन्तु आवश्यक हो तो वह राज्य को पुत्रों में विभक्त भी कर सकता है।

धर्म की प्रमुख रूप से चर्चा करते हुए कहा गया– धर्मस्थ धर्मानुचरण द्वारा दीवानी, फौजदारी व अन्य विवादों का निस्तारण करने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध है, राज्य की ओर से उसे दण्ड देने अथवा दोष मुक्त करने का अधिकार उसे प्राप्त है। यदि संस्था, धर्मशास्त्र एवं व्यवहारिक शास्त्र में विरोध दृष्टिगोचर हो तो राजा का न्याय ही प्रमाण होगा।

धर्मानुसार आचार्य चाणक्य ने आठ प्रकार के विवाह का विस्तृत वर्णन किया है, ब्रह्म विवाह, प्रजापत्य विवाह, आर्ष विवाह, दैव विवाह, गन्धर्व विवाह, असुर विवाह, राक्षसी विवाह एवं पैशाच विवाह। साथ ही वैवाहिक व्यवहार कैसा होना चाहिये इसकी भी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गयी है। अन्यान्य अपराध कौन से हैं और उसके लिये कैसा दण्ड दिया जाना चाहिये, इसका भी उल्लेख प्राप्त है।

व्यापार कर्म से जुड़े राज्याधिकारी को संस्थाध्यक्ष कहते हैं, समय–समय पर वह व्यापारियों के नाप–तौल के उपकरण वस्तुओं की उत्कृष्टता, उचित क्रय–विक्रय की परख करता रहे, जिससे व्यापारी निर्धारित माप–दण्डों का उल्लघन न कर सकें, अतिक्रमण करने वाले व्यापारी दण्ड के पात्र होंगे।

आचार्य कौटिल्य ने विद्या की महत्ता को वर्णित करते हुए विद्या को

चार प्रकार की बतलाया– आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति। इस प्रसंग में कौटिल्य ने मनु, आचार्य बृहस्पति आदि के मतों को भी वर्णित किया है। मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन तीनों विधाओं को मानते हैं, उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता है, आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान केवल दो ही विधाओं को मानते हैं वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार वार्ता लोगों की आजीविका का साधन मात्र है। दण्डनीति को शुक्राचार्य के अनुसरण करने वाले विद्वानों ने माना और उसी को सम्पूर्ण विधाओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया, किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विधाओं को मानते हैं और उनकी सत्यता धर्म तथा अधर्म के ज्ञान में बताते हैं। उनमें भी आन्वीक्षकी विद्या की अनुपम महत्ता को वर्णित करते हुए कहा गया है–

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां भाश्वदान्वीक्षकी मता।।

प्र.१० :अ0 १

दण्ड विधान का भी बहुत व्यवहारिक पक्षपात रहित वर्णन अर्थशास्त्र में दर्शनीय है।

अर्थशास्त्र की युक्तियों को अत्यन्त सुन्दर रूप से चित्रित करते हुए कहा गया– मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं, मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों को निरूपित करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है, यह अर्थशास्त्र बत्तीस प्रकार की युक्तियों से युक्त है, जैसे अधिकरण, विधान, योग, उपदेश, अपवर्ग इत्यादि।

इस लोक और परलोक की प्राप्ति तथा रक्षा करने में यही शास्त्र सहायक बतलाया गया है। यही अर्थशास्त्र धर्म, अर्थ और काम में संलग्न करता है और अर्थ के विरोधी अधर्मों को विनष्ट कर देता है।

चाणक्य नीति के विषय में तो जितनी प्रशंसा की जाये, कम है, यह सर्वप्रसिद्ध है– जैसे–

अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजयति।

चा०सूत्र-१३३

विचार किये बिना कार्य करने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है।

दानं धर्मः चा०सूत्र-१५५

दान करना धर्म है।

सुपूजितोऽपि दुर्जनः पीडयत्येव। चा०सूत्र-२०५

सत्कार किये जाने पर भी दुर्जन पीड़ा ही पहुँचाता है।

मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः। चा०सूत्र-२३०

मूर्खों से विवाद नही करना चाहिये।

ऐसी अनेकों नीतियां जो लोक–व्यवहारिक और सर्वकालिक हैं, जो मनुष्यों के उद्धारक रूप में अपनी अप्रतिम कीर्ति को शाश्वत बनाये हुए हैं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आचार्य कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र हमें आज भी जीवन–मूल्यों के उचित मार्ग दर्शन एवं क्रियान्वयन हेतु, राज्य के उचित संचालन हेतु, समान धर्म और राष्ट्र के कर्तव्यों के प्रति सुशिक्षित करता है। धर्म, कर्म एवं आचरण आदि सामाजिक मूल्यों के अनुशीलन हेतु यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य कौटिल्य, उनका अर्थशास्त्र और उस परम्परा का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञान होता है कि संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में अर्थशास्त्र का अत्यधिक योगदान रहा है और आचार्य कौटिल्य की कीर्ति–यश जब तक विश्व रहेगा, तब तक अपनी सम्पूर्ण शुभ्रता के साथ प्रकाशित रहेगी।